विषापहार स्तोत्र

(पद्यानुवाद- आचार्यश्री विमर्शसागर)

स्वात्मा में स्थित हो किन्तु कहाते आप सर्वव्यापक,
जानकर सर्वद्रव्य व्यापार आप कहलाते ग्रन्थ रहित।।
शुद्ध चैतन्य प्राण से दीर्घ किन्तु हो आप जरा से हीन,
करो पापों से रक्षा नाथ! आप हो श्रेष्ठ पुरुष प्राचीन।।1।।
अन्यजन से अचिन्त्य, युगभार अकेले किया आप धारण,
योगिजन कर न सके स्तुति करूँगा मैं क्या साधारण।
नहीं कर सकता स्तुति पूर्ण किन्तु फिर भी करता लवलेश,
सूर्य का नहीं प्रवेश जहाँ क्या दीपक करता नहीं प्रवेश।।2।।
आपकी स्तुति करने का इन्द्र ने छोड़ दिया अभिमान,
किन्तु मैं नहीं छोड़ सकता आपकी स्तुति हे भगवान्!
भवन के बीच झरोखे सा है यद्यपि मुझको मति-श्रुतज्ञान,
करूँगा फिर भी अधिकाधिक आपकी गुण स्तुति बखान।।3।।
विश्वदृष्टा हो भगवन्! आप, आप सर्वज्ञ कहाते हो,
आपको नहीं जानता कोई, किसी को नजर न आते हो।
आप प्रभु! कितने-कैसे हो? जगत कहने में है असमर्थ,
इसलिये पूर्ण स्तुति की नहीं मुझमें भी प्रभु! सामर्थ्य।।4।।
हुये बालकवत् जो निजदोष हो रहे हैं पीड़ित अत्यन्त,
निरोगी करके जग जन को किया उपकार महा भगवन्त।
हिताहित के विचार में मूढ़ सर्व प्राणी जो दुःख को प्राप्त,
मिटाते आप मूढ़ता रोग कहाते बालवैद्य हे आप्त!।।5।।

सूर्य न दाता-हर्ता किन्तु दिखाता नितप्रति झूठी आश,
सदा कुछ देने को असमर्थ बिताता दिवस कपट का दास।
आप अच्युत-स्वभाव-धारी चरण में जो नर नम्रीभूत,
तुरत देते हो इच्छित वस्तु भक्त हो जाते हैं अभिभूत।।6।।
आपके सन्मुख रहता जो भक्तिवश वो सुख को पाता,
विमुख रहनेवाला प्राणी, अरे दुःख ही दुःख को लाता।
किन्तु हे नाथ! आप दोनों पुरुष को रहते एक समान,
स्वच्छ दर्पण सम कान्ति युक्त हमेशा होते शोभावान।।7।।
हुआ करता सागर जिस थान वहाँ सागर की गहराई,
सुमेरु गिरि होता जिस थान वहाँ मेरु की ऊँचाई।
जहाँ आकाश और पृथ्वी वहाँ उनकी विशालता है,
आपमें समा रहे त्रय गुण और तिहुँलोक व्यापता है।।8।।
आपका प्रभु! परमार्थस्वभाव यद्यपि है परिवर्तनशील,
मोक्ष से वापिस आने का किन्तु उपदेश नहीं दुश्शील।
आप इन्द्रिय सुख को तजकर अतीन्द्रिय सुख की करते चाह,
जगत को लगे वृत्ति विपरीत किन्तु दिखलाते सच्ची राह।।9।।
किया है कामदेव को भस्म आपने ही जिनवर भगवान,
काम में हुआ कलंकित शम्भु न पाया वीतराग विज्ञान।
हुए विष्णु वृन्दा में लीन काम से मानी उनने हार,
आप थे जाग्रत जिससे नाथ! पास न आया काम विकार।।10।।
और यह देव पाप से युक्त और वह देव पाप से हीन,
दोष इनके कहने से आप गुणी नहिं होते हे स्वाधीन!
अगर सागर है महिमावान तो अपने निज स्वभाव से ही,
सरोवर को छोटा कहने से महिमा होती कभी नहीं।।11।।

जीव ले जाता है बहुथान कर्म की स्थिति को बहुबार,
कर्मथिति ले जाती बहुथान जीव को अरे अनेकों बार।
परस्पर जीव-कर्मथिति का नाव-नाविक जैसा नेतृत्व,
भवोदधि में, प्रभु! गाया आप, यद्यपि होता पूर्ण पृथक्त्व।।12।।
आपके समीचीन पथ से चला करते हैं जो विपरीत,
चाहते हैं सुख को लेकिन दुःखों को आचरते बन मीत।
गुणों के हेतु दोष को और धर्म के हेतु पाप ध्याते,
तेल के लिये पेलते बालु अरे! ज्यों बालक हर्षाते।।13।।
दूर करने प्रभाव विष का अहो! सब ही संसारी जन,
औषधि, मंत्र, रसायन, मणि हेतु करते नित परिभ्रमण।
किन्तु हे नाथ! आप ही मणि, औषधि, मंत्र, रसायन हैं,
सभी पर्याय नाम तेरे अरे! क्यों नहीं स्मरण हैं।।14।।
हृदय में करते न कुछ आप किन्तु कहलाते हो जगनाथ,
बिठाता हृदय आपको जो किया सम्पूर्ण जगत् निज हाथ।
चित्त से बाह्य हुये फिर भी सुखों से जीवित हैं हे नाथ!
अहा! सम्पूर्ण जगत को एक यही है आश्चर्य की बात।।15।।
आप त्रयलोकों के स्वामी जानते तत्त्व अरे! त्रय काल,
पदारथ नियत अतः संख्या ठीक कह सकते हे प्रतिपाल!
ज्ञान साम्राज्य के प्रति ठीक न हो सकती संख्या हे नाथ!
व्याप्त कर लेता ज्ञान इन्हें और भी यदि पदार्थ हों साथ।।16।।
आप हो अगमस्वरूपी नाथ! इन्द्र करता सेवा रमणीय,
नहीं उपकार आपका किन्तु करे कितनी सेवा कमनीय।
मिले ज्यों निज को छाया, छत्र सूर्य सन्मुख करके धारण,
आपकी भक्ति इन्द्र के ही आत्मसुख का होती कारण।।17।।

कहाँ प्रभु! राग-द्वेष से हीन, कहाँ भविजन को सुख उपदेश ?
बिना इच्छा के कैसे नाथ, अरे! हो सकता धर्मोपदेश।
यदि इच्छा के हो प्रतिकूल, तो सब जीवों को प्रिय कैसे ?
इसलिए पूर्ण रूप का कथन नहीं कर सकते हम जैसे।।18।।
अहो! जल शून्य उच्च पर्वत नदी के बन जाते आधार,
किन्तु पर्वत सम उच्च समुद्र नहीं बनते सरिता का द्वार।
आप इतने उदार स्वामी! भक्तजन सब कुछ पा जाते,
कृपण सागर सम धनपति से न जिसकी इच्छा कर पाते।।19।।
अरे सौधर्म इन्द्र ने ही विनय से किया दण्ड धारण,
करूँगा त्रिभुवन की सेवा नियम है एकमात्र कारण।
अतः प्रतिहार्य इन्द्र को है आपको हुआ कहाँ हे नाथ!
यदि प्रतिहार्य आपको है एक उपचार भाव के साथ।।20।।
देखते आदर से धनहीन कहाते जग में जो श्रीमान्,
किन्तु आदर से निर्धन को न देखें आप सिवा श्रीमान्।
देखते तम - स्थित जैसे उजेले में स्थित जन को,
देखता न प्रकाश स्थित मनुज वैसे तमथित जन को।।21।।
जो अपनी वृद्धि श्वासोच्छ्वास और प्रत्यक्ष नेत्र टिमकार,
आत्म अनुभव करने में हैं लोकजन जो भी मूढ़ विचार।
मनुज वह, सकल ज्ञेय का जो है ज्ञाता केवलज्ञान स्वरूप,
जान सकता है कैसे ? नाथ! अरे अज्ञानी आत्मस्वरूप।।22।।
आपकी स्तुति करने नाथ! किया करते जो जन कुलगान,
पुत्र हो नाभिराय के और पिता भरतेश के आप महान।
हुआ पत्थर से पैदा स्वर्ण हाथ पाकर जो तजते हैं,
अहो! अज्ञानीजन प्रभु आप आत्मगुण को नहिं भजते हैं।।23।।

सुरासुर को करके अभिभूत किया जन-जन को भी मदहोश,
मोह ने अपने अतिशय का बजाया त्रिभुवन में उद्घोष।
आपके बल के आगे नाथ! मोह के बल का हुआ निरोध,
ठीक ही है समूल हो नाश, करे बलशाली का जो विरोध।।24।।
आपने देखा है हे नाथ! एक मुक्ति का ही मारग,
अन्य देवों ने चहुँगति का सघन वन देखा दुःखकारक।
'मैंने सब कुछ देखा' यह सोच किया न किन्तु अरे अभिमान,
गर्व से देखी न निज बाहु मुझे ऐसा लगता भगवान्।।25।।
राहू सूरज का करता लोप और जल करता अग्नि विनाश,
प्रलय की वायु सागर का विरह संसार भोग का नाश।
आप से जो भी भिन्न पदार्थ नाश के साथ उदय को प्राप्त,
किन्तु तुम अव्याबाध अनंत सदा अविनाशी हो हे आप्त।।26।।
आपको जाने बिन कोई नमन कर जो फल पाता है,
जानकर अन्य देव को किन्तु कभी न वह फल पाता है।
नीलमणि को धारण करता पुरुष जो काँच बुद्धि के साथ,
करे मणि धारण जो , मणि जान, नहीं उससे दरिद्र हे नाथ।।27।।
चतुर जन सुन्दर मधुर वचन बोलकर महिमा करें अपार,
कषायों से जलते जन में, देवता का करते व्यवहार।
बुझे दीपक का ज्यों बढ़ना बताते सो निश्चय से लोग,
और फूटे घट का मंगल दिखाते ज्यों कर वचन प्रयोग।।28।।
अहो! प्रभु वचन अनेक स्वरूप प्रयोजन एक बताते हैं,
वचन हितकर सुन भवि तुमको सदा निर्दोष ही पाते हैं।
कि जैसे कोई ज्वर रोगी अरे जब होता ज्वर से मुक्त,
सभी स्वर हो जाते निर्दोष कहाता मधुर कण्ठ से युक्त।।29।।

आपकी इच्छा बिन हे नाथ! वचन स्वाभाविक खिरते हैं,
अहो! कोई नियोग ऐसे किसी शुभकाल में रहते हैं।
क्योंकि निश्चय से मैं सागर पूर्ण कर दूँ अब इस कारण,
चन्द्रमा उदित नहीं होता, उदित होता स्वभाव कारण।।30।।
आपके गुण गंभीर परम, हैं उज्ज्वल बहुत अनेक प्रकार,
आप में दिखता उनका अन्त अन्य देवों ने मानी हार।
आपकी स्तुति में उनका किन्तु दिखता न कोई अंत,
गुणों का इससे बढ़कर और अन्य क्या गुण है कहते संत।।31।।
मात्र स्तुति के द्वारा ही न इच्छित वस्तु होती सिद्ध,
परम भक्ति - स्मृति से और नमस्कृति से भी कहें प्रबुद्ध।
इसलिये करता हूँ नित भक्ति स्मरण और प्रणाम त्रिकाल,
हो किसी भी उपाय से सिद्ध चाहिये इच्छित फल तत्काल।।32।।
अतः हे तीन लोकरूपी नगर के अधिपति! अविनाशी!
हे सहज! हे अनंतशक्ति! हे परमज्ञानज्योति भासी!
स्वयं हो पुण्य-पाप से हीन, भव्य को सुकृत के साधन,
अवंद्यक होकर भी जगवंद्य आपको करता नित्य नमन।।33।।
रूप-रस-गंध-शब्द-स्पर्श रहित होकर के भी प्रभु! आप,
जानते सब विषयों के भेद धन्य यह केवलज्ञान प्रताप।
आप होकर के प्रभु! सर्वज्ञ, नहीं जाने जाते पर से,
स्मरण करता बारम्बार स्मरण योग्य नहीं मन से।।34।।
आपका प्रभु गंभीर स्वभाव नहीं मानस के चिन्तन योग्य,
अकिंचन आप किन्तु धनपति प्रार्थना करते निज-निज योग्य।
आपने देखा है जग पार, आपका पार नहीं दिखता,
जगत्पति मैं शरणा को प्राप्त, जगत् श्री चरणों में झुकता।।35।।

तीन लोकों के जीवों के आप हो दीक्षा गुरु महान,
नमन करता हूँ बारम्बार आपके श्री चरणों श्रीमान्।
आत्मगुण से वर्धित होकर हुए उन्नत स्वभाव से आप,
नहीं पत्थर फिर गिरि जैसा, कुलाचल मेरु अपने आप।।36।।
आप हो स्वयं प्रकाशी नाथ! नहीं दिन और रात जैसे,
अतः दिन और रात की तरह बाध्य-बाधकपन हो कैसे?
सदा लाघव-गौरव से हीन कहाते एक रूप भगवान्,
समय की मर्यादा से मुक्त वन्दना करता विभो! महान।।37।।
इस विधि स्तुति कर हे देव! दीन हो माँगूँ न वरदान,
आप हो रागद्वेष से हीन, उपेक्षक कहलाते श्रीमान्।
वृक्ष छाया आश्रितजन को सहज ही होती है जब प्राप्त,
याचना छाया की करके कौन सा लाभ अरे, हे आप्त।।38।।
प्रभो! कुछ देने की यदि चाह, यदि आग्रह माँगो वरदान,
आप में लीन रहूँ ऐसी भक्ति बुद्धि दो हे भगवान्!
आपकी मुझ पर वैसी ही कृपा होगी अवश्य स्वामी,
कौन गुरु करे नहीं पोषण शिष्य का जो गुरु अनुगामी।।39।।
आपकी यथाकथञ्चित् भक्ति विनत होकर करते जो लोग,
मिला करते उनको जिनदेव! सहज ही इच्छित फल के योग।
आपकी स्तुति भक्ति विशेष विनत होकर करता जो नाथ,
कीर्ति धन जय सुख होता प्राप्त संतति से मुक्ति का साथ।।40।।

विषापहार स्तोत्र का, करता जो नित पाठ।
विष विभाव का नाश कर, पाता निज गुण आठ।।
कवि धनञ्जय ने रचा, यह स्तोत्र महान।
कर 'विमर्श' पाऊँ प्रभो! मुक्ति का वरदान।।